संस्कृत साहित्य सौरभ

प्रियदर्शिका

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२५

हर्ष-कृत

प्रियदर्शिका

श्री नारायणदत्त पाण्डे
द्वारा
कथासार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अत्यंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री हरदयालुसिंहजी से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रंथों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को सम्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

संस्कृत-साहित्य में महाराज हर्षवर्द्धन के तीन रूपक ग्रंथ उपलब्ध हैं—रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द । दो की कथा आप पढ़ चुके हैं । तीसरी कथा अब पढ़िये । रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों के नायक वत्सराज उदयन हैं । एक में रत्नावली के साथ उनका परिणय दिखलाया गया है, और दूसरे में प्रियदर्शिका के साथ । ऐसे ही कथानक को लेकर कई शताब्दियों पूर्व कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की रचना की थी; पर प्रियदर्शिका में जो स्वाभाविकता और भावों की सरलता है, वह रस श्रृंगार के सभी ग्रंथों में नहीं पायी जाती । रत्नावली की तरह यह भी श्रृंगार-रस-प्रधान नाटक है । इसकी कथा में भी वही कौतूहल है । चरित्र-चित्रण बड़ा सफल है । भाषा, शैली सभी सहज और सरस है ।

महाराज हर्ष ने सन् ६०६ से ६४८ तक भारत के एक बड़े भाग पर शासन किया । उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ा; पर फिर भी धर्म और ललितकलाओं से उन्हें बड़ा प्रेम था । उनकी दान-वीरता प्रसिद्ध है । प्रसिद्ध चीनी यात्री श्युआन चुआंङ का जैसा स्वागत उन्होंने किया, वह उनकी उदारता को प्रकट करता है । बाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में इन्हीं महाराज हर्ष का चरित्र लिखा है ।

—सम्पादक

प्रियदर्शिका

पूर्व-कथा

प्राचीन काल में अंग देश में दृढ़वर्मा नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी पुत्री का नाम प्रियदर्शिका था। वह बहुत सुन्दर थी। महाराज ने उसका विवाह कौशाम्बी-नरेश वत्सराज उदयन के साथ करने का निश्चय किया था। उनका पड़ौसी कलिंग का राजा भी राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहता था। किन्तु राजा पहले ही वत्सराज को वचन दे चुके थे, इसलिए कलिंग-नरेश से उन्होंने नाहीं कर दी। इस पर कलिंग-नरेश क्रोध में भर उठे और उन्होंने अंग देश पर आक्रमण कर उसे रौंद डाला। यही नहीं उन्होंने दृढ़वर्मा को बन्दी भी बना लिया। जिस समय राजधानी में भयंकर युद्ध हो रहा था और चारों ओर भगदड़ मची हुई थी, उस समय राजा का स्वामिभक्त कंचुकी विनयवसु राजकुमारी को वहां से बाहर निकाल लाया। उसे अपने स्वामी के वचन का ध्यान था। इसीलिए वह राजकुमारी को वत्सराज को सौंपने के

विचार से कौशाम्बी की ओर चल पड़ा। रास्ते में विन्ध्यारण्य पड़ता था। वहाँ का अधिपति विन्ध्यकेतु राजा दृढ़वर्मा का मित्र था। कंचुकी ने राजकुमारी को उसको सौंप दिया और स्वयं पास के अगस्त्य-तीर्थ में स्नान करने चला गया। वहां से लौटा तो देखा कि उसके पीछे अचानक किसी शत्रु ने विन्ध्यारण्य पर आक्रमण कर दिया है और विन्ध्यकेतु को मार डाला है। राजकुमारी का भी कहीं पता नहीं है। उसने चारों ओर खोजा, किन्तु कहीं कुछ पता न चला। अब वह वत्सराज के पास क्या मुंह लेकर जाता। इसलिए वहां से लौट पड़ा। उसने यह निश्चय किया कि अब वह कारागार में पड़े हुए अपने स्वामी ही की सेवा में रहेगा।

१

वत्सराज उदयन कौशाम्बी के राजमहल में अपने विदूषक मित्र वसन्तक के साथ बातचीत कर रहे थे। वह उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के यहां बन्दी होकर रहे थे। उस दशा में उन्हें राजकुमारी वासवदत्ता को वीणा सिखाने का काम सौंपा गया था। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगे और एक दिन अपने मंत्रियों की सहायता से वत्सराज राजकुमारी सहित उज्जयिनी

से भाग निकले। अब वासवदत्ता उनकी पटरानी थी और वे एक समृद्ध राज्य के स्वामी थे।

उनकी बातचीत का विषय यही था। वत्सराज बड़े प्रसन्न थे कि उनका बन्दी होना कितना अच्छा हुआ। विदूषक कह रहा था कि यदि बन्दी होना अच्छा है तो राजा दृढ़वर्मा को बन्दी बनाने के कारण वह कलिंग-नरेश पर क्रोध क्यों कर रहे हैं।

राजा उदयन मुस्कराकर बोले, "मूर्ख ! सब कोई वत्सराज नहीं हैं। लेकिन छोड़ो इन बातों को। विजयसेन को विन्ध्यारण्य गये बहुत दिन हो गए। कोई सूचना नहीं मिली। रुमण्वान् को बुलाओ।" इसी समय द्वारपालिका ने आकर सूचना दी कि सेनापति विजयसेन और मंत्री रुमण्वान् द्वार पर आये हैं। राजा ने उन्हें तुरन्त बुला भेजा। रुमण्वान् ने आकर बताया कि विजयसेन विन्ध्यकेतु को समुचित दंड देकर लौट आये हैं। इससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और युद्ध का हाल पूछने लगे। विजयसेन ने कहा, "महाराज ! हमारी सेना ने तीन ही दिन में लम्बा मार्ग पार कर लिया था। हमने ठीक भोर के समय विन्ध्यकेतु पर आक्रमण किया। वह अपने थोड़े-से अनुयायियों सहित बड़ी वीरता से लड़ा। उसके सभी सैनिक मारे गए। उसकी

सारी देह घावों से भर गई, फिर भी वह भयंकर युद्ध करता रहा। अकेला ही पराक्रम दिखाता रहा। अन्त में अत्यन्त शिथिल हो जाने पर ही वह वीर गति को प्राप्त हुआ।"

वत्सराज यह सुनकर बड़े लज्जित हुए। उन्होंने विन्ध्यकेतु की वीरता की प्रशंसा की और पूछा, "क्या उसके कोई पुत्र नहीं है ?"

विजयसेन बोला, "विन्ध्यकेतु अपने सभी परिजनों सहित मारा गया तो उसकी पत्नियों ने भी उसका अनुसरण किया। वह सारा स्थान जन-शून्य हो गया। केवल विन्ध्यकेतु के घर की एक कुमारी विलाप करती हुई पाई गई। उसे हम साथ ले आये हैं। द्वार पर खड़ी है। महाराज उसके लिए जैसा उचित समझें, आज्ञा करें।"

राजा ने द्वारपालिका को आदेश दिया कि वह स्वयं जाकर उस कुमारी को महारानी वासवदत्ता को सौंप आये और उनसे कह दे कि वह उसे अपनी बहन के समान समझें। उसके लिए उच्च कुल की कुमारी के योग्य नृत्य, संगीत आदि की शिक्षा का प्रबन्ध कर दें, और जब वह सुशिक्षित होकर विवाह के योग्य हो जाय तो सूचित करें।

उसके बाद दोपहर हो जाने पर राजा स्नान के लिए उठ खड़े हुए। जाते-जाते रुमण्वान् से बोले, "कलिंग के दुष्ट राजा को दण्ड देने के लिए विजयसेन को आज ही कलिंग पर हमला करने के लिए भेजना है। इसलिए आप भी भीतर चलिये।"

२

महारानी वासवदत्ता के उपवास का दिन था। स्वस्ति-वाचन के लिए उन्होंने वसन्तक को बुलवा भेजा। ब्राह्मण महारानी से मिष्ठान्न और दक्षिणा पाने की आशा से बहुत प्रसन्न था। मीठी-मीठी कल्पनाएँ करता हुआ वह धारागृह के पास के उद्यान में सरोवर पर स्नान करने के लिए चला जा रहा था। इतने में उसने देखा कि महाराज भी उसी ओर चले आ रहे हैं। वह महाराज के लिए रुक गया।

राजा महारानी वासवदत्ता से मिलने के लिए उधर चले आये थे। वसन्तक को प्रसन्न देखकर उन्होंने उससे कारण पूछा। विदूषक बोला, "राजप्रासाद में चारों, पाँचों या छहों वेदों के पारंगत सहस्रों विद्वान् ब्राह्मण हैं। लेकिन उनके रहते हुए भी महारानी ने स्वस्ति-वाचन के लिए मुझे ही बुलाया है।"

राजा ने हँसकर कहा, "आपका महाब्राह्मणत्व तो आपके द्वारा बतलाये गए वेदों की संख्या से ही स्पष्ट हो रहा है।"

इसके बाद दोनों आगे बढ़े। बकुल, जूही, गुड़हल आदि अनेक प्रकार के फूलों के खिलने से उद्यान की शोभा अपूर्व हो रही थी। लता-वृक्षों से गिरे हुए फूलों से शिलातल ढके हुए थे। कमलों की सुगन्ध से महकता हुआ पवन चल रहा था। कहीं-कहीं तमाल वृक्षों की सघनता के कारण सूर्य का प्रकाश भी रुक रहा था। बिखरे हुए शेफाली फूलों के वृत्तों से भूमि ऐसी लगती थी जैसे मूँगे के टुकड़ों से ढक दी गई हो। फूले हुए सप्तपर्णी के कारण हाथियों के मद की-सी गन्ध चारों ओर फैल रही थी। कमलों के पराग में सने हुए और मकरन्द पीकर मदमत्त भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे।

जिस समय राजा और वसन्तक उद्यान की शोभा का निरीक्षण करते हुए चले जा रहे थे, उसी समय दूसरी ओर से महारानी की परिचारिका इन्दीवरिका और आरण्यिका भी सरोवर की ओर आ रही थीं। महारानी को महर्षि अगस्त्य को अर्घ्य चढ़ाना था। इसके लिए इन्दीवरिका को शेफाली के

पुष्पों की माला तैयार करनी थी और आरण्यिका को सरोवर में से कमल के फूल लाने थे। उसे सरोवर का पता न था। इसी कारण इन्दीवरिका उसके साथ जा रही थी। आरण्यिका थकी हुई और खिन्न-सी मालूम होती थी। सरोवर पर पहुँचकर वे दोनों उसमें उतर गईं।

तभी राजा और वसन्तक भी वहां आ पहुँचे। भरा हुआ वह स्वच्छ जलाशय बहुत ही मनोहर दिखाई दे रहा था। उसके पास पहुँचने पर सहसा वसन्तक की दृष्टि आरण्यिका पर पड़ी। कोमल किसलय के समान उसके सुन्दर सुकुमार हाथ थे। उसकी वेणी में गुंथे हुए फूल के चारों ओर भौंरे मंडरा रहे थे। इससे वह साक्षात् वन-देवी सी मालूम होती थी। उसने महाराज से पूछा, "यह कौन है।" राजा ने भी इससे पहले उसे कभी नहीं देखा था। उसकी सुन्दरता को देखकर वह चकित रह गए और उसके सम्बन्ध में अपने मन में अनेक-तर्क वितर्क करने लगे। इतने में वसन्तक को महारानी की परिचारिका इन्दीवरिका दीख पड़ी। उसे देखकर वे दोनों पेड़ की आड़ में हो गये।

इन्दीवरिका ने कमल का एक पत्ता तोड़ा और

आरण्यिका से बोली, "तुम तबतक कमल तोड़ो, मैं भी इस पत्ते में शेफाली के फूल चुनूँ। फिर महारानी के पास चले चलेंगे।" आरण्यिका ने उससे कहा, "मैं तुम्हारे बिना यहाँ अकेली एक क्षण भी नहीं रह सकती।"

इन्दीवरिका ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "जैसा आज महारानी कहती थीं, तुम्हें अब चिरकाल तक मेरे बिना ही रहना पड़ेगा।"

आरण्यिका ने उदास होकर पूछा, "महारानी क्या कहती थीं?"

इन्दीवरिका बोली, "तुम्हारे आने पर महाराज ने महारानी से यह कहलाया था कि यह विन्ध्यकेतु की कन्या जब विवाह-योग्य हो जाय तो मुझे सूचित करना। अब महारानी महाराज को सूचित करने को कहती थीं, जिससे वह तुम्हारे लिए कोई योग्य पात्र ढूँढने की चिन्ता करें।"

यह सुनकर आरण्यिका ने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिये और क्रुद्ध-सी होकर परिचारिका से बोली, "चलो, दूर हटो। तुम्हारी इस व्यर्थ की बकवास से मुझे कुछ नहीं लेना है।" इन्दीवरिका जाकर फूल चुनने लगी।

राजा पेड़ की आड़ से यह सब वार्तालाप सुन रहे थे। यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि यह आरण्यिका विन्ध्यकेतु की कन्या है। आज तक उसे नहीं देखा——इसके लिए उनके मन में पश्चात्ताप-सा होने लगा। वह वसन्तक से बोले, "मित्र, वास्तव में वह पुरुष धन्य होगा जिसे इसके पाणिग्रहण का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

राजा और वसन्तक कमल-पुष्पों को चुनती हुई आरण्यिका के अपूर्व सौंदर्य को चकित होकर देखते रहे। वास्तव में जल के ऊपर कमलों के बीच विचरण करता हुआ उसका हाथ उन पुष्पों से भी अधिक सुन्दर तथा सुकुमार दीखता था, और यह आश्चर्य-सा ही था कि उसके मुखचन्द्र की कान्ति के सामने भी कमल के फूल खिले ही रहे, सिकुड़ नहीं गए।

कमलों को चुनते चुनते एकाएक आरण्यिका चिल्ला उठी। पुष्पों से उड़कर भौंरे उसके मुख के चारों ओर मंडराने लगे थे। उनसे भयभीत होकर उसने साड़ी के छोर से अपना मुँह ढक लिया और इन्दीवरिका को पुकारकर बोली, "सखी! शीघ्र आकर इन दुष्ट भौंरों से मेरी रक्षा करो। ये चारों ओर से आकर मेरे ऊपर आक्रमण कर रहे हैं।"

इन्दीवरिका कुछ दूर चली गई थी । इसलिए वसन्तक की सलाह से राजा ही आरण्यिका की सहायता के लिए चले गये। मुँह ढका होने से आरण्यिका उन्हें देख न पाई। राजा अपने उत्तरीय से भौंरों को भगाते हुए आरण्यिका से बोले, "घबराने की आवश्यकता नहीं है, कुमारी। तुम्हारे मुख को कमल समझकर ये भौंरे उसपर मंडरा रहे हैं।'

राजा का स्वर सुनते ही आरण्यिका डर गई। उसने मुँह पर से वस्त्र हटा दिया। देखा सामने पर-पुरुष है तो वह इन्दीवरिका को शीघ्र आने के लिए पुकारने लगी।

वसन्तक बोल उठा, "सारी पृथ्वी की रक्षा करने वाले स्वयं वत्सराज के रहते हुए परिचारिका को रक्षा के लिए क्यों पुकारती हो ?"

यह सुनकर आरण्यिका एक साथ लज्जा और स्नेह से भर उठी। उसने राजा की ओर संकोच भरी दृष्टि से देखा और सोचने लगी, 'यही महाराज हैं, जिनसे पिताजी ने मेरा विवाह करने का निश्चय किया था।'

इतने में इन्दीवरिका भी आ पहुंची। उसे देख-कर राजा और वसन्तक पास ही के कदली-कुंज में

चले गये। आरण्यिका भी सरोवर से निकलकर स्नेह-पूर्ण दृष्टि से उस ओर देखती हुई इन्दीवरिका के साथ अन्तःपुर को लौट गई।

सायंकाल हो चला था। राजा और वसन्तक भी कदली-कुंज से निकलकर आरण्यिका के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुए प्रासाद की ओर चले गये।

३

कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर अन्तःपुर में खेलने के लिए वृद्धा संन्यासिनी सांकृत्यायिनी ने महाराज और महारानी के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को लेकर 'उदयन चरित' नामक एक रूपक तैयार किया था। महारानी वासवदत्ता की भूमिका में आरण्यिका को, और महाराज की भूमिका में महारानी की परिचारिका मनोरमा को अभिनय करने का कार्य सौंपा गया था। पहले दिन अनमने होने के कारण आरण्यिका ने अभि-नय करने में कुछ भूलें कर डाली थीं। इस आशंका से कि कहीं वह आज फिर उसी प्रकार की भूलें दुहरा-कर महारानी को क्रुद्ध न कर डाले, मनोरमा आर-ण्यिका को सावधान करने के लिए उसे उद्यान में ढूंढ़ रही थी। इतने में उसने देखा कि वह मन-ही-मन कुछ बड़बड़ाती हुई सरोवर-तट पर के कदली-कुंज में

प्रवेश कर रही है। उसके हृदय की बातों को जानने के लिए मनोरमा पास ही एक झाड़ी की आड़ में खड़ी होकर सुनने लगी।

आरण्यिका दुःख भरे स्वर में बड़बड़ा रही थी, 'मेरे हृदय ! दुर्लभ व्यक्ति को प्राप्त करने की आकांक्षा से तू मुझे इस प्रकार क्यों पीड़ित कर रहा है ? महाराज देखने में कितने सौम्य हैं। फिर भी वह मुझे इस प्रकार क्यों जला रहे हैं ? किन्तु इसमें उनका क्या अपराध ? यह तो मेरा ही दुर्भाग्य है....।'

यह सुनकर मनोरमा को पहले दिन अपनी प्रिय सखी के उदास होने का कारण मालूम हो गया। यह जानकर कि आरण्यिका का हृदय किसी ऐसे-वैसे व्यक्ति की ओर नहीं, किन्तु स्वयं महाराज की ओर आकृष्ट हुआ है, उसने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा की। यही नहीं उसकी इस भावना को उसने उसकी कुलीनता से उपयुक्त ही ठहराया।

इधर कदली-कुंज में आरण्यिका का बड़बड़ाना चालू था। अपने हृदय की व्यथा के भार को कुछ हलका करने के लिए वह अपनी प्रिय सखी मनोरमा से अपनी इन सारी बातों को कहना चाहती थी, किन्तु फिर सोचती थी, 'लज्जा के कारण उससे कैसे कह सकूंगी ?'

मनोरमा ने अब सबकुछ जान लिया था। वह अपनी प्रिय सखी को धीरज बँधाकर यथाशक्ति उसकी सहायता करना चाहती थी। इसलिए एकाएक कदली-कुंज में जाकर वह आरण्यिका से बोली, "ठीक तो है री ! अपनी अन्तरंग सखी से भी लज्जा ही करनी चाहिए।"

आरण्यिका समझ गई कि मनोरमा ने सबकुछ सुन लिया है। उसने स्नेहपूर्वक अपनी सखी का हाथ थामकर कहा, "सखी ! गुस्सा न होओ। लज्जा के कारण ही मुझे तुमसे कहने का साहस नहीं हुआ।" इसके बाद उसने जो कहना शेष रह गया था, कह डाला।

मनोरमा को निश्चय था कि आरण्यिका जैसी अपूर्व सुन्दरी को देख लेने पर महाराज भी उसकी ओर खिंचे बिना नहीं रह सकते, वह स्वयं ही इससे मिलने के लिए आकुल होंगे। इसलिए वह अपनी सखी के लिए निश्चिंत थी।

इतने ही में किसीके आने की आहट सुनाई पड़ी, और मनोरमा ने देखा कि महाराज का मित्र वसन्तक चला आ रहा है।

आरण्यिका को देखने के बाद से महाराज की

दशा भी उसीकी जैसी हो रही थी। वह निरंतर उसी के बारे में सोचते रहते थे। राज्य के कार्यों में भी उनका मन नहीं लगता था। उनकी ऐसी अवस्था देखकर, एक सच्चे मित्र के नाते, वसन्तक आरण्यिका के हृदय की थाह लेने के लिए उसे खोज रहा था। सारे अन्तःपुर को छान डालने पर भी जब उसे वह न मिली तो उद्यान में ढूंढता हुआ वह इधर सरोवर की ओर चला आया था। वह महाराज के संताप के उपचार के लिए कमल की पत्तियाँ तोड़कर ले जाना चाहता था। उसके बड़बड़ाने से मनोरमा को महाराज की दशा का आभास मिल गया था। वह शीघ्र कदली-कुंज से बाहर निकलकर वसन्तक के पास आई। बेचारा विदूषक, जो महाराज की स्थिति के बारे में बड़बड़ाता हुआ फिर रहा था, मनोरमा को देखकर भयभीत हो गया, कि कहीं मेरी बातें सुन लेने पर वह महारानी वासवदत्ता से मेरी चुगली न कर दे।

मनोरमा ने तुरन्त उसकी आशंका को दूर करते हुए कहा, "डरो मत, जैसी अवस्था तुम अपने मित्र की बताते हो, उससे दूनी बुरी अवस्था मेरी सखी की है। देखो न।" यह कहकर वह वसन्तक को कदली-

कुंज में ले गई। आरण्यिका लज्जा के कारण उठ बैठी। उसे देखकर वसन्तक बहुत प्रसन्न हुआ। एकान्त में वह मनोरमा से बोला, "राजा से इसका मिलना किस प्रकार हो सकता है।" मनोरमा ने उसके कान में कुछ कहा, जिसे सुनकर वह बहुत खुश हुआ और वहां से चला गया। मनोरमा भी आरण्यिका को साथ लेकर रंगशाला में पहुँच गई।

महारानी वासवदत्ता, सांकृत्यायिनी और परिवार के दूसरे लोग सभी रंगशाला की ओर जा रहे थे। महारानी सांकृत्यायिनी की बड़ी प्रशंसा कर रही थीं कि उन्होंने महाराज और महारानी के गुप्त जीवन की घटनाओं को बड़ी सफलतापूर्वक नाटक में चित्रित किया है।

नाट्यशाला बड़े सुन्दर ढंग से सजाई गई थी। सुनहरे स्तम्भों पर रत्न जड़े हुए थे और मोतियों की झालरें लटक रही थीं। अप्सराओं के समान सजी हुई स्त्रियाँ इधर-उधर घूमती हुई उसकी शोभा बढ़ा रही थीं।

वहां पहुँचकर महारानी ने अपने शरीर के आभूषण उतारकर आरण्यिका को पहनने के लिए दिए और मनोरमा से कहा, "इन्दीवरिका से वे आभू-

षण लेकर पहन लो जो आर्यपुत्र को पिताजी ने दिए थे। उन्हें पहनकर तुम ठीक महाराज के समान ही लगोगी।"

मनोरमा और आरण्यिका आभूषण लेकर अन्दर चली गईं। कुछ देर के बाद नाटक भी आरम्भ हो गया। राजकुमारी वासवदत्ता की भूमिका में आरण्यिका ने रंगमंच पर प्रवेश किया। हाथ में वीणा लिए हुए कांचनमाला उसके साथ थी। दोनों वीणाचार्य उदयन की राह देखने लगीं। जब वह कुछ देर तक नहीं आए तो उन्होंने कंचुकी से उन्हें तुरन्त भेज देने को कहा। तबतक राजकुमारी स्वयं वीणा लेकर उसकी झंकार के साथ स्वर मिलाकर गाने लगी। उधर मनोरमा के स्थान पर अपनी भूमिका में स्वयं राजा मंच पर प्रवेश करने ही वाले थे कि उन्होंने कांचनमाला और आरण्यिका को बातें करते सुना। वह यह जानने के लिए रुक गए कि अब किस प्रसंग का अभिनय चल रहा है। कांचनमाला कह रही थी, "राजकुमारी जो चाहें सो पूछें।"

आरण्यिका ने पूछा, "क्या यह सच है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को प्रसन्न करलें तो वह निश्चय ही उन्हें बन्दीघर से मुक्त कर देंगे।"

ठीक इसी समय महाराज ने प्रवेश किया और कहा, "इसमें कोई सन्देह नहीं। परिजनों सहित राजा प्रद्योत को अपनी वीणा-वादन से मोहित कर मैं शीघ्र ही वासवदत्ता को ले जाऊँगा।"

महाराज के इस प्रकार रंगमंच पर प्रवेश करते ही दर्शकों में बैठी हुई महारानी वासवदत्ता एकाएक खड़ी हो गईं और उनके मुख से बरबस ही निकल पड़ा, "आर्यपुत्र की जय हो।" सांकृत्यायिनी ने उन्हें याद दिलाया यह तो नाटक है। वह फिर बैठ गईं और इन्दीवरिका से बोली, "आर्यपुत्र ने जब मुझे वीणा सिखाई थी तब उनके पाँवों में बेड़ियां पड़ी थीं। इसलिए इस कमलों की माला से मनोरमा के पाँव बाँध दो।"

यह कहकर उन्होंने अपने गले की माला उसे दे दी। यह सब तो हो गया लेकिन मन-ही-मन वह यह सोचने लगीं——मनोरमा किस प्रकार रूप में, स्वर में, सब बातों में महाराज का इतना सच्चा अनुकरण कर रही है। शाबाश मनोरमा शाबाश! तुम तो सचमुच बहुत अच्छा अभिनय कर लेती हो।

रूपक आगे बढ़ने लगा। आरण्यिका गाकर वीणा बजा रही थी। उसने इतना सुन्दर गाया कि महा-

राजा प्रसन्न होकर बोले, "अहो, तेरा गाना विचित्र है और वीणा बजाना भी अद्‌भुत है।" आरण्यिका ने यह सुनकर वीणा को हृदय से लगा लिया और आसन से उठकर राजा को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। महाराज मुस्कराकर बोले, "तुम्हारे लिए जो तुम चाहती हो वह तुम्हें मिले।"

कांचनमाला ने आरण्यिका के आसन की ओर इशारा करके कहा, "महाराज, यहाँ बैठिए।"

महाराज बैठ गए और बोले, "राजपुत्री कहां बैठेंगी ?"

कांचनमाला मुस्कराई, "अभी आपने राजकुमारी की विद्या की बड़ी प्रशंसा की थी इसलिए वे गुरु के पास बैठने योग्य हो गई हैं।"

राजा ने आरण्यिका को आधे आसन पर बैठने को कहा, तब वह झिझक गई। लेकिन जब कांचनमाला ने विश्वास दिलाया तब वह लजा कर वहां बैठ गई।

यह देखकर दर्शकों में बैठी वासवदत्ता ने सांकृत्यायिनी से कहा, "भगवती, यह आपकी सूझ है। उस समय मैं उनके साथ एक आसन पर नहीं बैठी थी।"

सांकृत्यायिनी बोली, "काव्य ऐसा ही होता है।"

नाटक और आगे बढ़ा। आगे चलकर जब राजा ने आरण्यिका का हाथ पकड़ा तो वासवदत्ता तिलमिला उठी, बोली, "भगवती, यह तुम देखो। मैं काल्पनिक काव्य का यह मिथ्या अभिनय नहीं देख सकती।"

और वह सांकृत्यायिनी के मना करने पर भी वहां से चली गईं। मन-ही-मन उनका सन्देह भी बढ़ रहा था। इतने में ही इन्दीवरिका ने उन्हें बताया कि रंगशाला के द्वार पर वसन्तक गाढ़ी नींद में सोया हुआ है। अब तो महारानी का सन्देह निश्चय के रूप में बदल गया। उन्होंने कहा, "यदि वसन्तक यहाँ है तो महाराज को भी यहीं होना चाहिए।" उन्होंने वसन्तक को जगाया। आँखें बन्द किए ही वह बड़बड़ाने लगा, "क्यों मनोरमा, क्या महाराज अभिनय करके लौट आए?"

अब क्या था। सारा भेद खुल गया। मनोरमा बेचारी पास ही खड़ी सिमटी हुई यह तमाशा देख रही थी। महारानी ने उससे कहा, "शाबाश मनोरमा शाबाश, तुमने बहुत सुन्दर अभिनय किया।" भय से काँपती हुई मनोरमा महारानी के चरणों में गिर पड़ी, "महारानी, इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं। इस

निगोड़े वसन्तक ने मेरे हाथ से सारे आभूषण छीन लिये। मैं बहुत चिल्लाई परन्तु मृदंग के शब्द के कारण किसीने मेरा चिल्लाना नहीं सुना।"

वासवदत्ता ने कहा, "मैं सबकुछ जान गई। इस नाटक का सूत्रधार यह वसन्तक ही है। तुम इसके हाथ-पांव मजबूती से बांध दो। मैं रंगशाला में जाती हूँ।" भीतर जाकर वह महाराज से बोलीं, "आर्यपुत्र! मैंने आपको मनोरमा समझकर आपके श्रीचरणों में कमल की इस माला का बंधन डलवा दिया था इस अशुभ कार्य के लिए मुझे क्षमा किया जाय।"

यह कहकर उन्होंने बन्धन खोल दिए। राजा लजा गए। आरण्यिका भय से काँपती हुई एक कोने में जाकर खड़ी हो गई और सांकृत्यायिनी चुपचाप वहाँ से चली गई।

महाराज ने रानी वासवदत्ता को प्रसन्न करनें के लिए बार-बार क्षमा माँगी। लेकिन महारानी का क्रोध दूर नहीं हुआ। वह आरण्यिका से बोली, "महाराज तुमसे क्षमा माँग रहे हैं। उनके पास जाओ।"

यह कहकर वह उसे खींचकर महाराज के पास ले गई। कांपती हुई आरण्यिका ने कहा, "महारानी, मैं कुछ नहीं जानती।"

क्रोध में भरी हुई महारानी बोलीं, "हाँ, तू कैसे जानने लगी। अच्छा मैं तुम्हें बताती हूँ।" यह कहकर उन्होंने इन्दीवरिका को आदेश दिया कि इसको बन्दी बना लो।

महाराज ने फिर उनके चरण छुए लेकिन वह तो बिना कुछ वोले ही अपने महल में चली गईं।

४

आरण्यिका को बन्दी हुए बहुत दिन बीत गए। लेकिन महारानी का क्रोध शान्त नहीं हुआ। दुखी होकर उसने आत्महत्या करनी चाही लेकिन किसी प्रकार मनोरमा ने समझा-बुझाकर उसे ऐसा करने से रोका। और महाराज तक उसका हाल पहुंचाने के लिए वह वसन्तक के पास गई।

इसी समय महारानी वासवदत्ता को उज्जयिनी से उनकी माता का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—अंगदेश के राजा दृढ़वर्मा मेरे बहनोई होने के कारण तुम्हारे पिता के समान हैं। एक वर्ष से भी अधिक हो गया वह कलिंग-नरेश के बन्दी हैं। तुम्हारा पति उनका पड़ोसी है, शक्तिशाली है। इसलिए उनका इस घटना के प्रति उदासीन रहना ठीक नहीं है।

रंगशाला की घटना के कारण रानी बहुत दुखी

थीं। इस पत्र ने उन्हें और भी अशान्त बना दिया। यह सोचकर वह और भी दुखी थीं कि अब महाराज को मेरे सम्बन्धियों से क्यों प्रेम होने लगा। सांकृत्यायिनी ने उन्हें समझाया कि वत्सराज ऐसे नहीं हैं। अंगदेश के राजा का यह अपमान देखकर वह चुप नहीं बैठेंगे। महारानी ने इस बात पर विश्वास नहीं किया। बोलीं, 'आप भी कैसी भोली हैं ? नाटक के समय जो-कुछ हुआ उसको देखकर आप यह सब कैसे कहती हैं कि महाराज मुझसे तथा मेरे सम्बन्धियों से प्रेम करते हैं। मां बेचारी क्या जानें कि वासवदत्ता अब महाराज के लिए वह नहीं रहीं जो पहले थी।"

और वह रोने लगीं। उसी समय महाराज वसन्तक के साथ वहां आ पहुंचे। वह महारानी को प्रसन्न करने के लिए आए थे। महारानी उन्हें देखकर खड़ी हो गईं और प्रणाम करके भूमि पर बैठ गईं। राजा भी वहीं बैठ गए और हाथ जोड़कर उनसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करने लगे। इस पर सांकृत्यायिनी ने कहा, "महाराज, महारानी के दुखी होने का कारण कुछ और ही है।" और उन्होंने सब बातें कह सुनाईं। राजा हँस पड़े। रानी से बोले, "यदि यही कारण है तो चिन्ता मत करो। मुझे सबकुछ मालूम है। भला

मैं दृढ़वर्मा के विषय में कैसे उदासीन रह सकता हूं। मुझे सूचना मिली है कि मेरे सेनापति विजयसेन ने कलिंगराज की सेना को नष्ट कर दिया है। वह दुर्ग में जाकर छिप गया है। आशा करता हूं कि वह शीघ्र ही या तो बन्दी हो जायगा या युद्ध में मारा जायगा। काम पूरा नहीं हुआ था इसलिए मैंने अभी तुमसे कुछ नहीं कहा था।"

यह सुनकर महारानी वासवदत्ता को कुछ सन्तोष हुआ। सांकृत्यायिनी उनसे बोली, "महारानी, मैंने आपसे कहा था न ! वत्सराज इस सम्बन्ध में चुप नहीं बैठे रह सकते थे।"

उसी समय सेनापति विजयसेन और कंचुकी विनयवसु के आने का समाचार मिला। महाराज ने तुरन्त उन्हें बुला भेजा। विनयवसु ने बताया, "महाराज, आपकी आज्ञा से विजयसेन ने कलिंगराज को मार डाला और महाराज दृढ़वर्मा को फिर से सिंहासन पर बिठा दिया है।"

महाराज ने विजयसेन की प्रशंसा करते हुए महारानी को बधाई दी। वसन्तक इस अवसर पर कब चूकनेवाला था। महारानी से बोला, "अपार आनन्द के इस अवसर पर आपको तीन

काम करने चाहिए। पहला काम यह है कि आप (महाराज की ओर इशारा करते हुए) अपने वीणाचार्य की पूजा करें। दूसरा (अपनी ओर इशारा करते हुए) ब्राह्मणों का सम्मान करें और तीसरा—सब बन्दियों को छोड़ दें।"

महारानी सबकुछ समझ गईं। लेकिन वह प्रसन्न थीं। उन्होंने सांकृत्यायिनी से कहा, "आरण्यिका को मुक्त कर दो।"

कंचुकी विनयवसु ने फिर कहा, "राजा दृढ़वर्मा आपकी इस कृपा के लिए बहुत ही आभारी हैं। उन्होंने कहलवाया है कि उनका जीवन आपके अधीन है। उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री प्रियदर्शिका का विवाह आपके साथ करने का निश्चय किया था लेकिन वह कहीं खो गई है। अपना वचन पूरा न करने के कारण महाराज दृढ़वर्मा बहुत दुखी हैं।"

यह समाचार सुनकर महारानी वासवदत्ता की आंखों में आँसू भर आए बोली, "क्यों आर्य, मेरी बहन कैसे खो गई ?"

विनयवसु बोला, "कलिंग के राजा ने जब आक्रमण किया तब राजधानी में बड़ा भयंकर उपद्रव मच उठा था। उस समय मैं राजकुमारी को लेकर

इधर ही चल पड़ा; लेकिन मार्ग में इन्हें विन्ध्यकेतु के यहां छोड़कर मैं अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने चला गया। लौटने पर देखा——वहां सबकुछ नष्ट हो गया है और राजकुमारी का कहीं पता नहीं है।"

कंचुकी यह सब बता ही रहा था कि एकाएक मनोरमा ने कहा, "उस बेचारी का जीवन संकट में पड़ गया।" महारानी वासवदत्ता को ऐसा लगा कि मनोरमा राजकुमारी प्रियदर्शिका के बारे में कुछ कह रही है। बोलीं, "क्यों, प्रियदर्शिका को क्या हुआ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया, "मैं प्रियदर्शिका के बारे में कुछ नहीं जानती। बेचारी आरण्यिका ने विष-पान कर लिया है। किसी प्रकार उसे बचाइए।"

यह कहकर वह महारानी के चरणों में गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। महारानी यह सुनकर प्रियदर्शिका के दुःख को भूल गईं और घबरा उठीं। उन्होंने मनोरमा से कहा, "आरण्यिका को तुरन्त यहां ले आओ। महाराज विष उतारना जानते हैं।"

कुछ ही क्षण में मनोरमा आरण्यिका को वहां ले आई। उसकी अवस्था सचमुच बहुत बुरी थी। उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छाया हुआ था।

धीरे-धीरे उसकी चेतना खोती जा रही थी। यह देखकर महारानी वासवदत्ता ने हाथ पकड़कर महाराज को उठाया और प्रार्थना की कि वह आरण्यिका के प्राणों की रक्षा करें।

कंचुकी ने जैसे ही आरण्यिका को देखा तो वह चौंक पड़ा। उसने वासवदत्ता से पूछा, "यह कौन है, कहां से आई है ?"

वासवदत्ता बोली, "यह विन्ध्यकेतु की कन्या है। विजयसेन इसे यहां लाया था।"

कंचुकी ने माथा ठोक लिया। कहा, "यह विन्ध्यकेतु की कन्या नहीं है। यह तो तुम्हारी बहन प्रियदर्शिका है।"

अब तो महारानी का दुःख दूना हो गया। वह रोते हुए महाराज से बोली, "आर्यपुत्र, शीघ्रता कीजिए, मेरी बहन मर रही है। इसे बचाइए।"

राजा स्वयं बहुत दुखी थे। आगे बढ़कर उन्होंने अपना हाथ प्रियदर्शिका के ऊपर रखा और मंत्र पढ़ने लगे। जैसे-जैसे वह हाथ फेरते गए और मंत्र पढ़ते गए वैसे-वैसे राजकुमारी के प्राण लौटते गए। थोड़ी देर में वह धीरे-धीरे उठकर बैठ गई। अंगड़ाई लेती हुई बहुत थके और अस्पष्ट स्वर में बोली, "मनोरमा, मैं

बहुत देरतक सोती रही ।" लेकिन जब उसने पूरी तरह आँखें खोलीं और महाराज को अपने सामने खड़ा देखा तो वह लजा गई । विनयवसु उसके चरणों में गिर पड़ा । बोला, "राजकुमारी, मैं आपके पिता का सेवक हूं ।"

उसे वहां देखकर प्रियदर्शिका को बहुत अचरज हुआ और वह अपने माता-पिता को याद कर रोने लगी । विनयवसु ने कहा, "राजकुमारी रोओ मत । तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं । वत्सराज की कृपा से उन्हें अपना राज्य प्राप्त हो गया है ।"

वासवदत्ता ने प्रसन्न होकर रोती हुई राजकुमारी को गले से लगा लिया । बोलीं, "अरी, अब तो बहन का स्नेह निभा ले ।"

वसन्तक अब भी नहीं चूका । कहने लगा, "महारानी आप तो अपनी बहन को गले लगाकर सन्तुष्ट हो गई हैं लेकिन वैद्यराज के पारितोषिक का भी कुछ ध्यान है ।"

महारानी ने उत्तर दिया, "मुझे ध्यान है ।"

दूसरा विदूषक राजा से बोला, "हे वैद्यराज, अब हाथ फैलाइए ।"

राजा ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और रानी ने प्रियदर्शिका का हाथ उनके हाथ में रख दिया । किन्तु

राजा ने अपना हाथ तुरन्त खींच लिया। कहा, "नहीं-नहीं, मुझे इनसे क्या काम। बड़ी मुश्किल से तो मैंने तुम्हें मनाया है।"

वासवदत्ता बोली, "इसे अस्वीकार करने का अब आपको कोई अधिकार नहीं है। मौसाजी पहले ही इसे आपको दे चुके हैं।" और महारानी ने राजा के हाथ में प्रियदर्शिका का हाथ थमा दिया। राजा मुस्कराने लगे।

इसके बाद महारानी वासवदत्ता ने महाराज से पूछा, "आर्यपुत्र, अब आपका और क्या काम है ?"

राजा बोले, '"देवी ! इससे अधिक मेरा और क्या काम हो सकता है। महाराज दृढ़वर्मा को उनका राज्य फिर से मिल गया है। तुम मुझसे प्रसन्न हो गई हो। फिर भी इतना और हो जाय, इन्द्र समय पर वर्षा करें। भूमि में खूब अन्न उत्पन्न हो। ब्राह्मण लोग विधिपूर्वक यज्ञ करके देवताओं को प्रसन्न करें। सज्जनों की मित्रता युग-युग तक बनी रहे और दुर्जनों के कठोर वचन पूरी तरह से समाप्त हो जायं।"

'संस्कृत साहित्य सौरभ' को पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता

मूल्य प्रत्येक का छः आना

२५

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना